मलबे का मालिक

मोहन राकेश

मलबे का मालिक

https://www.hindiadda.com/malabe-ka-malik/

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज़्यादा चाव उन घरों और बाज़ारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सडक़ पर मुसलमानों की कोई-न-कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज़ को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-ख़ासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाज़ारों में से गुज़रते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीज़ों की याद दिला रहे थे...देख-फतहदीना, मिसरी बाज़ार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब वह पानवाला बैठा है।...यह नमक मंडी देख लो, ख़ान साहब! यहाँ की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस...!

बहुत दिनों के बाद बाज़ारों में तुर्रेदार पगडिय़ाँ और लाल तुरकी टोपियाँ नज़र आ रही थीं। लाहौर से आये मुसलमानों में काफ़ी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मज़बूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफ़सोस घिर आता-वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ़ के सब-के-सब मकान जल गये थे?...यहाँ हक़ीम आसिफ़अली की दुकान थी न? अब यहाँ एक मोची ने कब्ज़ा कर रखा है?

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते-वली, यह मस्ज़िद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुज़रती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ़ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढक़र उनसे बगलगीर होने लगते। ज़्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते-कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई ख़ास तब्दीली नहीं आयी? वहाँ का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?...कहते हैं, पाकिस्तान में अब बु$र्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?... इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता

था, लाहौर एक शहर नहीं, हज़ारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत ख़ुशी हो रही थी।

बाज़ार बाँसाँ अमृतसर का एक उजड़ा-सा बाज़ार है, जहाँ विभाजन से पहले ज़्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहाँ ज़्यादातर बाँसों और शहतीरों की ही दुकानें थीं जो सब की सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाज़ार बाँसाँ की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अन्देशा पैदा हो गया था। बाज़ार बाँसाँ के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। ख़ैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी, पर उसमें मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गये थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौ$जूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच वे मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाज़ार बाँसाँ में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी क्योंकि उस बाज़ार के रहने वाले ज़्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे, और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाज़ार में आया और वहाँ की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयाँ में पड़ गया। बायीं तरफ़ जानेवाली गली के पास पहुँचकर उसके पैर अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहाँ बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ़ कुछ बच्चे कीड़ी-कीड़ा खेल रहे थे और कुछ फ़ासले पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज़ में चीख़ती हुई एक-दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज़ ढूँढने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लडक़ी गली के अन्दर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे को बाँह से पकडक़र गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब

अपनी बाँह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लडक़ी ने उसे अपनी बाँहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, चुप कर, ख़सम-खाने! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकडक़र ले जाएगा! कह रही हूँ, चुप कर!"

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बग़ल में दबा ली। उसका गला ख़ुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा काँप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बन्द दुकान के त$ख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहाँ पहले ऊँचे-ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहाँ अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़-सी बैठी थीं। बिजली के खम्भे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके मुँह से निकला, "या मालिक!"

एक नवयवुक चाबियों का गुच्छा घुमाता गली की तरफ़ आया। बुड्ढे को वहाँ खड़े देखकर उसने पूछा, "कहिए मियाँजी, यहाँ किसलिए खड़े हैं?"

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बाँहों में हल्की-सी कँपकँपी महसूस हुई। उसने होंठों पर ज़बान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी है न?"

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बन्द करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?"

"साढ़े सात साल पहले तू इतना-सा था," कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आये हैं?"

"हाँ! पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढे ने कहा, "मेरा लडक़ा चिराग़दीन तुम लोगों का दर्ज़ी था। तक़सीम से छ: महीने पहले हम लोगों ने यहाँ अपना नया मकान बनवाया था।"

"ओ, गनी मियाँ!" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हाँ, बेटे मैं तुम लोगों का गनी मियाँ हूँ! चिराग़ और उसके बीवी-बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान की ही सूरत देख लूँ!" बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अपने आँसुओं को बहने से रोक लिया।

"तुम तो शायद काफ़ी पहले यहाँ से चले गये थे," मनोरी के स्वर में संवेदना भर आयी।

"हाँ, बेटे यह मेरी बदब$ख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहाँ रहता, तो उसके साथ मैं भी..."कहते हुए उसे एहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुँह में रोक लिया पर आँखों में आये आँसुओं को नीचे बह जाने दिया।

"छोड़ो गनी मियाँ, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है?" मनोरी ने गनी की बाँह अपने हाथ में ले ली। "चलो,तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूँ।"

गली में ख़बर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है जो रामदासी के लडक़े को उठाने जा रहा था...उसकी बहन वक़्त पर उसे पकड़ लायी, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह ख़बर मिलते ही जो स्त्रियाँ गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गयीं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार-पुकारकर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाख़िल हुआ, तो गली में सिर्फ़ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएँ पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हाँ, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झाँक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयीं। दाढ़ी के सब बाल सफ़ेद हो जाने के बाव$जूद चिराग़दीन के बाप अब्दुल गनी को पहचानने में लोगों को दिक्कत नहीं हुई।

"वह था तुम्हारा मकान," मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ़ इशारा किया। गनी पल-भर ठिठककर फटी-फटी आँखों से उस तरफ़ देखता रहा। चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफ़ी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी ज़बान पहले से और ख़ुश्क हो गयी और घुटने भी ज़्यादा काँपने लगे।

"यह मलबा?" उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बाँह को थोड़ा और सहारा देकर जड़-से स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झाँक रही थीं।

लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाज़े का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ़ दो जली हुई अलमारियाँ थीं जिनकी कालिख पर अब सफ़ेदी की हल्की-हल्की तह उभर आयी थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, "यह बाकी रह गया है, यह?" और उसके घुटने जैसे जवाब दे गये और वह वहीं जले हुए चौखट को पकडक़र बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा सटा और उसके मुँह से बिलखने की-सी आवाज़ निकली, "हाय ओए चिराग़दीना!"

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झडक़र आसपास बिखर गये। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छ:-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख़ ढूँढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ़ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झाँकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज़्यादा हो गयी थी। उनमें चेहमेगोइयाँ चल रही थीं कि आज कुछ-न-कुछ ज़रूर होगा...चिराग़दीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने-आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा-कि शाम के वक़्त चिराग़ ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया-कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहाँ के हिन्दुओं पर ही उसका काफ़ी दबदबा था-चिराग़ तो ख़ैर मुसलमान था। चिराग़ हाथ का कौर बीच में ही छोडक़र नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियाँ, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झाँकने लगीं। चिराग़ ने ड्योढ़ी से बाहर क़दम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कॉलर से पकडक़र अपनी तरफ़ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग़ उसका छुरेवाला हाथ पकडक़र चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय, कोई मुझे बचाओ!" ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाईं और चीख़ती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ़ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग़ की जद्दोजेहद करती बाँहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जाँघों को अपने घुटनों से दबाए हुए बोला, "चीख़ता क्यों है, भैण के...तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले पाकिस्तान!"

और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुँचीं, चिराग़ को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियाँ तब बन्द हो गयी थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बन्द करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बन्द किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीख़ने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग़ के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गयीं।

दो दिन चिराग़ के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खायी थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नज़र रखकर ही उसने चिराग़ को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगानेवाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को गाय-भैंस बाँधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इज़ाज़त के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी ज़रूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुँच जाएगी...जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाख़ूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाज़े के चौख़ट को बाँह में लिये हुए रो रहा था, "बोल, चिराग़दीना, बोल! तू कहाँ चला गया,ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड़ दिया, ओएऽऽऽ!"

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह ख़ुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और अपने मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया जिससे उसे खाँसी आ गयी और उसने कुएँ के फ़र्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ़ देखकर उसकी छाती से धौंकनी की-सी आवाज़ निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

"गनी अपने मलबे पर बैठा है," उसके शागिर्द लच्छे पहलावन ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

"मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!" पहलवान ने झाग से घरघराई आवाज़ में कहा।

"मगर वह वहाँ बैठा है," लच्छे ने आँखों में एक रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

"बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला!" रक्खे की टाँगें थोड़ी फैल गयीं और उसने अपनी नंगी जाँघों पर हाथ फेर लिया।

"मनोरी ने अगर उसे कुछ बता-वता दिया तो...?" लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।

"मनोरी की क्या शामत आयी है?"

लच्छा चला गया।

कुएँ पर पीपल की कई पुरानी पत्तियाँ बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ में दी, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई?"

"नहीं।"

"ले," और उसने खाँसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बाँह पकड़े मलबे की तरफ़ से आ रहा था। लच्छा उकड़ूँ होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आँखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की तरफ़ लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बाँह थामे उससे एक क़दम आगे चल रहा था-जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएँ के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएँ के पास पहुँचते न पहुँचते उसकी दोनों बाँहें फैल गयीं और उसने कहा, "रक्खे पहलवान!"

रक्खे ने गरदन उठाकर और आँखें ज़रा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट-सी घरघराहट हुई, पर वह बोला नहीं।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?" गनी ने बाँहें नीची करके कहा, "मैं गनी हूँ, अब्दुल गनी, चिराग़दीन का बाप!"

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायज़ा लिया। अब्दुल गनी की आँखों में उसे देखकर एक चमक-सी आ गयी थी। सफ़ेद दाढ़ी के नीचे उसके चेहरे की झुर्रियाँ भी कुछ फैल गयी थीं। रक्खे का निचला होंठ फडक़ा। फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, "सुना, गनिया!"

गनी की बाँहें फिर फैलने को हुईं, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गयीं। वह पीपल का सहारा लेकर कुएँ की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयाँ तेज़ हो गयीं कि अब दोनों आमने-सामने आ गये हैं, तो बात ज़रूर खुलेगी...फिर हो सकता है दोनों में गाली-गलौज़ भी हो।...अब रक्खा गनी को हाथ नहीं लगा सकता। अब वे दिन नहीं रहे।...बड़ा मलबे का मालिक बनता था!...असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है! मरदूद किसी को वहाँ गाय का खूँटा तक नहीं लगाने देता!...मनोरी भी डरपोक है। इसने गनी को बता क्यों नहीं दिया कि रक्खे ने ही चिराग़ और उसके बीवी-बच्चों को मारा है!...रक्खा आदमी नहीं साँड है! दिन-भर साँड की तरह गली में घूमता है!...गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है! दाढ़ी के सारे बाल सफ़ेद हो गये हैं!...

गनी ने कुएँ की सिल पर बैठकर कहा, "देख रक्खे पहलान, क्या से क्या हो गया है! भरा-पूरा घर छोडक़र गया था और आज यहाँ यह मिट्टी देखने आया हूँ! बसे घर की आज यही निशानी रह गयी है! तू सच पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोडक़र जाने को मन नहीं करता!" और उसकी आँखें फिर छलछला आयीं।

पहलवान ने अपनी टाँगें समेट लीं और अंगोछा कुएँ की मुँडेर से उठाकर कन्धे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ़ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?" गनी किसी तरह अपने आँसू रोककर बोला, "तुम लोग उसके पास थे। सब में भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी?"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में एक अस्वाभाविक-सी गूँज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गये थे। मूँछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा

था। उसे माथे पर किसी चीज़ का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींचकर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बताऊँ, रक्खे," गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला, "मेरा हाल तो मेरा ख़ुदा ही जानता है। चिराग़ वहाँ साथ होता, तो और बात थी।...मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह ज़िद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोडक़र नहीं जाऊँगा-यह अपनी गली है, यहाँ कोई ख़तरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में ख़तरा न हो, पर बाहर से तो ख़तरा आ सकता है! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी!...रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जाँघों के जोड़ पर उसे सख़्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतडिय़ों के पास से जैसे कोई चीज़ उसकी साँस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझडिय़ाँ-सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और होंठों के बीच एक फ़ासला-सा महसूस हो रहा था। उसने अंगोछे से होंठों के कोनों को साफ़ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू! ही है!"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के गिर्द दायरे गहरे हो गये हैं। वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था, हो गया रक्खिआ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ़ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुमहें सेहतमन्द रखे!" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा रक्खे,पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम-सी आवाज़ निकली। अंगोछा लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी हसरत-भरी नज़र से आसपास देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयाँ चलती रहीं-कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था!...रक्खा अब किस मुँह से लोगों को...मलबे पर गाय बाँधने से रोकेगा? बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह! रक्खे मरदूद का घर...न घाट, इसे किसी की माँ-बहन का लिहाज़ था?

थोड़ी देर में स्त्रियाँ घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली-डंडा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियाँ किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठ खंखारता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?"

"हाँ, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज़ की तरह गली के बाहर बायीं तरफ़ की दुकान के त$ख्ते पर आ बैठा। रोज़ वह रास्ते से गुज़रने वाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहाँ बैठा लच्छे को अपनी वैष्नो देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पन्द्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पंडित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा, "तत-तत-तत...तत-तत...!!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अँधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता बह रहा था। रात की ख़ामोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाज़ें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रही थीं...च्यु-च्यु-च्यु...चिक्-चिक्-चिक्...किर्र्र्र्-र्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्...। एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँ से उडक़र उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर-उधर छितरा गये। कौए के वहाँ बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा-वऊ-अऊ-वउ! कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फडफ़ड़ाता कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए

के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ़ मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज़ में बोला, "दुर् दुर्दुर्...दुरे!" मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा-वऊ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ...।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ़ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बन्द नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते को माँ की गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएँ की सिल पर लेट गया। उसके वहाँ से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया और कुएँ की तरफ़ मुँह करके भौंकने लगा। काफ़ी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता-फिरता नज़र नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।